# विषय-सूची

# आद्य वक्तव्य

अन्य भवों की अपेक्षा, मनुष्य भव आत्म-उन्नति के लिये अधिक उपयोगी है, अतः मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है, इस को व्यर्थ खोना बड़ी भारी भूल है। इस कारण आत्म-हित के किसी भी कार्य में जरा भी प्रमाद (आलस्य) न करना चाहिये।

भोजन, विषय-सेवन, नींद, घूमना-फिरना आदि कार्य मनुष्य से कहीं अच्छा पशु पक्षी किया करते हैं, अतः खाना पीना, इन्द्रियां तृप्त करना, धन संचय करना, सन्तान उत्पन्न करना कोई महान कार्य नहीं, क्योंकि इनसे आत्मा की तृप्ति नहीं होती। आत्मा की तृप्ति के लिये धर्म का आराधन उपयोगी है।

जो व्यक्ति निरन्तर आत्म-धर्म-साधन के लिये घर-परिवार को छोड़कर साधु न बन सकता हो उसको गृहस्थाश्रम में रह कर धर्म-आराधन करना चाहिये। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये परमात्मा की पवित्र मूर्ति अपने सामने रखकर उसके समान स्वयं बनने की भावना करनी चाहिये। इसी उद्देश्य से मन्दिर बनाकर, वहां प्रतिमा विराजमान करना, जिनवाणी का स्वाध्याय, सामायिक (ध्यान) आदि कार्य किये जाते हैं।

मनुष्य को जब तक हाथ, पैर और नेत्र काम देते हैं तब तक उसका कर्तव्य है कि अपनी आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने के लिये मन्दिर में जाकर वीतराग परमात्मा का विनय के साथ दर्शन-पूजन करे जिससे कुछ आत्मा को खुराक मिले। इस कारण प्रातःकाल अन्य सांसारिक कार्य करने से पहिले भगवान का दर्शन पूजन अवश्य करना चाहिए, अपने मुख से भगवान की स्तुति पढ़कर अपनी जीभ पवित्र करनी चाहिये। पता नहीं आज जो मनुष्य स्वस्थ दिख रहा है वह कल भी स्वस्थ रहेगा या नहीं।

मुनि भी जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन, विनय, स्तुति तथा भाव-पूजन करते हैं, तब गृहस्थ को तो यह और भी अधिक करना चाहिये। पहाड़ी धीरज, दिल्ली के तथा अन्य अनेक धार्मिक प्रियमित्रों ने दर्शन पूजन की विधि के विषय में कुछ संक्षेप से लिखने की प्रेरणा की थी, उनके अनुरोध से इस पुनीत कार्य में मेरा कुछ समय लगा है। सम्भव है इसमें प्रमाद-वश त्रुटियां रह गई हों, विज्ञ सज्जन उनकी सूचना दें, जिससे उन्हें भविष्य में सुधारा जा सके।

भाद्रपद सुदी ५ बुधवार
वीर सं० २४८१
२१-९-५५

अजितकुमार शास्त्री
सम्पादक जैन गजट,
देहली

## इस पुस्तक का प्रकाशन

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प्रथम संस्करण | सन् | १९५५ | ... | २००० |
| द्वितीय | ,, | ,, | १९५६ | ... | ५००० |
| तृतीय | ,, | ,, | १९५७ | ... | ५००० |
| चतुर्थ | ,, | ,, | १९६० | ... | ३००० |
| पांचवा | ,, | ,, | १९६३ | ... | ४००० |
| | | | कुल | | १९००० |

वर्तमान में मानव भौतिक पदार्थों में लीन होकर अपने धर्म कर्म को भूलते जा रहे हैं। उनको अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक ज्ञान भी नहीं हो पाता। अतः सरल शब्दों में गृहस्थों के कर्तव्य पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। श्रीमान् पं० अजितकुमारजी शास्त्री सम्पादक "जैन गजट" समाज के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा सुलेखक हैं। आपने बहुत ही उपयोगी साहित्य का सृजन किया है। यह पुस्तक लिखकर तो आपने एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की है। थोड़े से समय में ही पुस्तक का यह पांचवां संस्करण निकलना पुस्तक की उपयोगिता का एक बड़ा प्रमाण है।

श्री बाबू श्रीकृष्णजी को इस प्रकार के उपयोगी साहित्य का प्रकाशन कर अल्प मूल्य में उसे सर्वसाधारण तक पहुँचाने का बड़ा चाव और लगन है। वे इसके लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। आपने कई उपयोगी प्रकाशन किए हैं। इस पुस्तक की १६००० प्रतियां छप चुकी हैं। आपका प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है।

स्वाध्यायशाला श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, वर्कस्माना, सब्जी मण्डी-देहली के धर्मप्रेमी सज्जनों ने इस कार्य को अपने हाथ में लेकर बहुत उपयोगी कार्य किया है। आशा है कि वहां से ऐसे प्रकाशन बराबर होते रहेंगे।

अन्त में मैं धार्मिक सज्जनों से प्रार्थना करता हूं कि वे इस उपयोगी पुस्तक से लाभ उठावें।

हीरालाल जैन "कौशल"
(साहित्यरत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ)
अध्यक्ष—जैन [illegible], देहली

[illegible] अगस्त [illegible] ]

११) श्री महावीर प्रसाद सुरेशचंद जैन, पहाड़ी धीरज, देहली
११) जैन पेन्ट हाऊस, सदर बाजार, देहली।
११) श्री बख्शी राम दरोगा मल जैन, पहाड़ी धीरज, देहली।
११) श्री सुगन चंद जैन (अलवर वाले) गली जमादार, पहाड़ी धीरज, देहली।
११) श्री ज्ञान चंद जैन, पहाड़ी धीरज, देहली।
११) श्री तिलोक चंद सुरेश चंद जी जैन, (राजपुर गढ़ी वाले) पहाड़ी धीरज, देहली।
११) श्री जम्बूप्रसाद राकेशकुमारजी जैन, (राजपुर गढ़ी वाले) पहाड़ी धीरज, देहली।

६७२)

आर्थिक सहायता प्राप्त होने पर भी पुस्तक का कम से कम मूल्य इस कारण रक्खा गया है कि पुस्तक लेने वाले उसका सदुपयोग करें। बिना मूल्य की पुस्तक का लोग उचित उपयोग नहीं करते। ज्ञान प्रचार ही हमारा उद्देश्य है, व्यवसाय नहीं। इसी कारण हम कम से कम मूल्य पर साहित्य वितरण करते हैं। जो धर्म प्रेमी सज्जन ऐसे प्रकाशन के प्रचार में सहयोग देना चाहें वे इस प्रकाशन की अधिक से अधिक प्रतियां खरीद कर वितरण कर सकते हैं। अथवा प्रकाशन में यथा शक्ति आर्थिक सहायता निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

श्री कृष्ण जैन,
मंत्री, श्री शास्त्र स्वाध्याय शाला,
श्री पार्श्व नाथ दि० जैन मंदिर
बाबाजी की बगीची, बर्फ खाने के पीछे
सब्जी मण्डी, देहली-६।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

# दैनिक जैनधर्म-चर्या

—:०:—

## धर्म क्या है ?

पदार्थ का स्वभाव 'धर्म' कहलाता है। जैसे अग्नि का स्वभाव 'धर्म' गर्मी है। उसी तरह आत्मा का स्वभाव चेतन देखना, जानना है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप सम्यग्दर्शन (अच्छा श्रद्धा Right faith) सम्यग्ज्ञान (सत्यज्ञान Right knowledge), सम्यक्चारित्र (आत्म-शुद्धि करने वाला सच्चारित्र Right conduct) के द्वारा प्राप्त होता है, इस कारण इन तीनों को भी धर्म कहते हैं। आत्मा को उन्नत शुद्ध बनाने वा तथा कोमल सरल परिणामों को सत्य अहिंसा आदि कार्यों को भी धर्म कहते हैं। इन सब धर्म स्वरूपों के शब्दों में अन्तर है भाव सबका एक ही है।

## जैन धर्म

आत्मशत्रुओं (विकारभावों) को जीतने वाले को 'जिन' (ज इतिजनः—विजेता) कहते हैं। महान विजेता जिनेंद्र भगव ने जो उत्कृष्ट महान विजेता—परमात्मा बनाने वाला मा बतलाया उसको 'जैन-धर्म कहते हैं।

शत्रु, मित्र का ताना बाना बुनकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ममकार प्रेम, द्वेष, ईर्ष्या, छल, दम्भ, हिंसा, चोरी, काम-सेवन, परिग्रह—संचय आदि अनेक तरह के काम करता है और अपने फंसने के लिये कर्मों का जाल तैयार करता रहता है। ऐसे कर्म-जाल में फंसे हुए जीव 'आत्मा' (साधारण) कहे जाते हैं।

## महात्मा

जिन बुद्धिमान स्त्री पुरुषों को विवेक द्वारा आत्मा और शरीर का भेद-ज्ञान हो जाता है, वे शरीर को अपनी वस्तु नहीं समझते, इसी कारण शरीर से उनकी मोह-ममता हट जाती है। शरीर की तरह वे संसार की अन्य वस्तुओं को भी अपनी नहीं समझते, विषय-भोगों में भी उन्हें रुचि नहीं रहती। आत्मा को शुद्ध करने के लिये तप, त्याग, संयम का अभ्यास करते हैं। समता भाव का उनमें उदय होता है, इसलिए संसार में उनको न कोई मित्र दीखता है, न कोई शत्रु। शान्ति, वैराग्य बढ़ाने वाली बातों में उनकी रुचि बढ़ती जाती है। यदि वे गृहस्थ-आश्रम में किसी कारण रहते हैं, तो घर का काम बड़ी उदासीनता से करते हैं, उनकी यही इच्छा रहती है कि मुझे कब ऐसा अवसर मिले कि घर-बार छोड़कर एकान्त में आत्म-साधना करता रहूं। जो लोग समय आत्म-साधनामें लगाया करते हैं। सारांश यह है कि भेद-विज्ञान हो जाने पर मनुष्य का ध्यान बाहरी बातों से हट कर आत्मा की ओर लग जाता है। ऐसे मनुष्य 'महात्मा' (विशेष उच्च) होते हैं। उनका कर्म-बन्धन ढीला हो जाता है।

## परमात्मा

संसार के सभी पदार्थों से मोह ममता का सम्बन्ध तोड़कर जब साधु बन करके विरक्त पुरुष तप, त्याग, संयम के द्वारा तथा आत्म-ध्यान के द्वारा आत्म-साधना में लीन हो जाते हैं, तब उन के नया कर्म-बन्धन होना रुक जाता है और पुराना कर्म-बन्धन

जन्म नहीं लेना पड़ता और वे सदा अपने निराकुल सुख में लीन रहते हैं। कर्म शत्रुओं को जीतने के कारण उनको जिन या जिनेन्द्र भी कहते हैं।

उनमें से कुछ मुक्तात्माओं को जिन्होंने मुक्त होने से पूर्व प्राणियों को संसार के दुःखों से छूटने और मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बतलाया था, जैन धर्म में तीर्थंकर माना गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में ऐसे तीर्थंकरों की संख्या २४ होती है। उन्हीं की अरहंत (मोक्ष जाने से पूर्व) अवस्था की मूर्तियां जैन मन्दिरों में विराजमान होती हैं।

## हमारा लक्ष्य

जो स्त्री पुरुष संसार की अशान्ति, व्याकुलता, वेदना, अज्ञान से छूटना चाहते हैं उन का लक्ष्य वह 'परमात्मा' ही होता है क्योंकि पूर्ण-शुद्धि होकर ही जन्म-मरण, अज्ञान, दुख, क्लेश दूर हो सकते हैं, अतः अपने आप को पूर्ण शुद्ध, निर्विकार वीतराग परमात्मा बनाना ही बुद्धिमान स्त्री पुरुष का लक्ष्य हो सकता है।

## लक्ष्य प्राप्त करने का साधन

अपने आत्मा को पूर्ण शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा बनाने के लिये अपनी दृष्टि बाहर से, यानी संसार की ओर से, हटाकर अंतरंग, यानी आत्मा की ओर करनी चाहिये। ऐसा करने पर ही शरीर. पुत्र, मित्र, धन आदि से मोह ममता दूर होती है।

इस कार्य को सिद्ध करने के लिये एक तो आत्मा का और अनात्मा (जड़ पदार्थ, शरीर, धन, मकान आदि का तथा महात्मा, परमात्मा का, कर्म बन्धन करने, मुक्ति होने आदि बातों का आवश्यक ज्ञान होना चाहिये। उस ज्ञान के अनुनार अपनी श्रद्धा

अतः भगवान् के दर्शन, चिन्तवन आदि का उद्देश अपने आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख, शांति, सन्तोष, निर्भयता, धीरज आदि गुणों के विकसित करने का ही रखना चाहिये, क्योंकि आत्मा को सच्चा सुख और और शान्ति अपने गुणों के विकास होने से ही मिलती है। भक्त स्त्री पुरुष के आत्मा में उन गुणों का ज्यों ज्यों विकास होता जायगा त्यों त्यों मन्द कषाय होने से सांसारिक सुख साधन देने वाले शुभ कर्म स्वयं बंधते जावेंगे। परन्तु लक्ष्य तो किसान के अन्न के लक्ष्य की भांति वीतरागता निर्दोष परमात्मा का ही रखना चाहिये।

## भूल

वीतराग भगवान् से धन, सम्पत्ति, पुत्र, स्त्री आदि सांसारिक पदार्थों की इच्छा करना भूल है। वीतराग भगवान् के पास न तो ये पदार्थ हैं और न वे इन वस्तुओं को दे सकते हैं और न उन से इन संसार-चक्र में घुमाने वाले पदार्थों की इच्छा ही करनी चाहिये। वे तो वीतराग हैं उनसे तो शान्ति सन्तोष आदि वीतरागता प्राप्त होने की ही इच्छा या मांग अथवा भावना करनी चाहिये. यह ही आत्मा का सच्चा ऊंचा उद्देश्य या लक्ष्य है। इसी लक्ष्य से आत्मा वास्तव में सुखी हो सकता है।

## सारांश

जिन महात्माओं तीर्थंकरों आदि ने राज-वैभव परिवार आदि सांसारिक सुख सामग्री छोड़ कर कठोर तपस्या करके परमात्मा पद प्राप्त किया था, अर्हन्त अवस्था (जीवन-मुक्त दशा) में उन्होंने आत्म शुद्धि का मार्ग समस्त संसार को दिखाया था फिर वे पूर्ण-मुक्त होकर संसार से अदृश्य हो गये, उनका आदर्श प्राप्त करने के लिये उन की अर्हन्त दशा की वीतराग प्रतिमा बनाई जाती है। उस वीतराग प्रतिमा का अर्हन्त भगवान् की भावना से आत्म-शुद्धि करने के लिये दर्शन, पूजन, विनय. भक्ति, चिन्तन करना चाहिये।

## स्वाध्याय

प्रतिदिन जिनवाणी के शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना पूछना, पाठ करना, चिन्तवन करना, चर्चा करना 'स्वध्याय' है।

स्वाध्याय ज्ञान बढ़ाने का सबसे अच्छा सुगम साधन है।

## संयम

सावधानी से देख भाल कर कार्य करते हुए जीवों की रक्षा करना तथा अपनी इन्द्रियों को वश करना 'संयम' है। इसके लिये प्रतिदिन भोजन, पान, वस्त्र, आभूषण, खेल देखने, गाना सुनने, काम सेवन करने, सवारी करने आदि का नियम करते रहना चाहिये, कि मैं आज इतनी बार भोजन करूंगा, ब्रह्मचर्य से रहूँगा या एक बार विषय सेवन करूंगा, इतने पदार्थ खाऊंगा एक खेल देखूंगा (या नहीं) आदि।

## तप

इच्छाओं का रोकना 'तप' है। इसके लिये भोजन कम करना, एकाशन, रसत्याग आदि करते रहना चाहिये। सिनेमा आदि के देखने आदि की इच्छाओं को रोकना चाहिये।

## दान

गृहस्थाश्रम में परिग्रह के संचय तथा आरम्भ कार्य से जो पाप संचय हुआ करता है उस पाप भार को हलका करते रहने के लिये तथा लोभ आदि विषयों को कम करने के लिये प्रतिदिन आहार, औषधि, अभय (रक्षा) और ज्ञानदान में से यथाशक्ति धर्म-पात्रों मुनि आदि को भक्ति के साथ तथा दीन दुखी जीवों को करुणा-भाव से आवश्यकतानुसार दान करते रहना चाहिये।

भूखे को भोजन, नंगे भिखारी को वस्त्र देना, अनाथ, विधवा दुखी, दरिद्री की शक्ति अनुसार सेवा, उपकार करना

अतः प्रत्येक भाई को प्रतिदिन पूजा तथा शक्ति अनुसार दान अवश्य करना चाहिये।

## रात्रि-भोजन

मनुष्य स्वभाव से दिवाचर ( दिन में भोजन करने वाला ) प्राणी है, दिन में भोजन मनुष्य के लिये सब तरह गुणकारी रहता है। सूर्य का प्रकाश जिस तरह मनुष्य के नेत्रों को देखने में सुविधा प्रदान करता है। सूर्य के प्रकाश मे मनुष्य अपने भोजन में आये हुये सूक्ष्म जीव जन्तुओं, बाल आदि को अच्छी तरह देख कर उनके मुख में जाने से रोक सकता है। उसी तरह सूर्य का प्रकाश अनेक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणुओं को भी उत्पन्न नहीं होने देता, इस कारण दिन के समय भोजन करने से वे कीटाणु भोजन में नहीं आने पाते जो कि सूर्य अस्त हो जाने पर उत्पन्न हो जाते हैं और बहुत सूक्ष्म होने से नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ते।

सूर्य अस्त हो जाने पर वायु मंडल भी सूर्य किरणों के अभाव से स्वच्छ स्वास्थ्यकारक नहीं रहने पाता, वृक्ष भी दिन भर की संचित दूषित वायु छोड़ते रहते हैं, इसी कारण दिन की अपेक्षा रात्रि में रोग प्रबल हो जाते हैं, दिन की अपेक्षा रोगियों की मृत्यु-संख्या रात्रि में अधिक होती है, इसलिये स्वास्थ्य की दृष्टि से भी दिन में भोजन करना लाभदायक है।

सोने से पहले लगभग ४-५ घन्टे पहले भोजन कर लेना, भोजन पचाने के लिये आवश्यक है, ऐसा तभी हो सकता है जब कि भोजन दिन में कर लिया जावे।

इस के सिवाय भोजन बनाते समय अनेक जीव जन्तु पकने वाले दाल, शाक, खीर आदि में पड़ जाते हैं उन की हिंसा तो होती ही है किन्तु कभी २ वे भोज्य पदार्थ भी विषैले हो जाते हैं जो प्राण नाशके भी कारण बन जाते हैं। गत वर्षों में एक बरात

के मनुष्य इसी कारण मरगये कि उनको रात में बनाकर परोसे गये शाक में एक सांप गिर कर मर गया था, उसके विष से वह शाक विषैला हो गया था। १४-१५ वर्ष पहले मुसलमानों की एक बरात के १५-२० आदमी भी रात में बनाई गई खीर को खाकर मर गये थे। देखने पर पीछे मालूम हुआ कि खीर पकते समय छत में से एक काला सर्प खीर में गिर गया था। इन्दौर में एक वैष्णव पुजारी भी एक काले सर्प द्वारा पिये गये विषैले दूध को पीकर मर गया था, रात्रि के धीमे प्रकाश में विषैले दूध का बिगड़ा हुआ रंग उसे स्पष्ट दिखाई न दे सका। इत्यादि अनेक दुर्घटनाओं से रात्रि भोजन में बड़ी बड़ी हानियां प्रमाणित होती है।

बिजली का प्रकाश सूर्य के प्रकाश के समान न तो व्यापक होता है, न उतना स्पष्ट तथा सुलभ होता है और न रात के दूषित वातावरण को निर्दोष बना सकता है, इस कारण बिजली के प्रकाश द्वारा भी रात्रि समय पैदा होने वाले सूक्ष्म कीटाणु भोज्य पदार्थों से दूर नहीं किये जा सकते।

अत: दिन में भोजन बनाना और दिन में ही भोजन करना धार्मिक दृष्टि से तथा शारीरिक दृष्टि से एवं जीवनवार आदि सामाजिक दृष्टि से भी लाभदायक है। कम से कम अन्न का भोजन तो रात में प्रत्येक व्यक्ति को कभी न करना चाहिये।

रात में भोजन करने वालों को नक्तञ्चर या निशाचर (राक्षस या जंगली हिंसक जानवर) कहते हैं। मनुष्य को निशाचर न बनना चाहिये।

## जल-छानना

मनुष्य को अपने जीवन के लिये वायु के बाद जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है, वह है 'जल'। भोजन के

बिना केवल जल के सहारे मनुष्य कई मास तक जीवित रह सकता है, अतः जल बहुत उपयोगी पदार्थ है।

जल में स्वभाव से छोटे त्रस कीटाणु उत्पन्न होते रहते हैं, उनमें से कुछ नेत्रों से दिखाई देते हैं, कुछ खुर्दबीन से दीख पड़ते हैं। यदि वे कीटाणु पीते समय पेट में चले जावें तो एक तो उन की हिंसा होती है, दूसरे उनके कारण कई रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। नहरुआ रोग तो प्रायः बिन छना हुआ पानी पीने से ही हुआ करता है। इस कारण पानी सदा दोहरे वस्त्र से छना हुआ पीना चाहिये। छने हुए जल को यदि ठन्डा ही रक्खा जावे तो उसमें २ घड़ी [ ४८ मिनट ] पीछे फिर जीव उत्पन्न हो जाते हैं इस कारण पानी जब भी पिया जावे छानकर ही पाना चाहिये। छने हुए जल में यदि लौंग, इलायची चूर्ण करके डाल दी जावे तो उसमें ६ घंटे तक जीव उत्पन्न नहीं होते। साधारण गर्म किये हुए जल में १२ घंटे तक, तथा उबाले हुए जल में २४ घंटे तक जीव उत्पन्न नहो होने पाते। इस मर्यादा के अनुसार पीने के लिये जल का उपयोग करना चाहिये।

मुजफ्फरनगर के एक गांव में एक आदमी ने गर्मी के दिनों में रात को लोटे में रक्खा हुआ जल यों ही पी लिया, लोटे में बैठा हुआ बिच्छू उसके मुख में चला गया और तालु से चिपट कर उसके डंक मारता रहा जिससे वह मर गया।

मुलतान में मूलचन्द कपूर नामक एक युवक नहर में स्नान करते समय पानी पी गया, पानी के साथ छोटा सा मेंढ़क भी उसके पेट में चला गया, जो कि उसके पेट में जाकर अटक गया और वहीं रहता रहा। वह मेंढ़क जब मूलचन्द को काटता था तब उसके पेट में बहुत पीड़ा होती थी उसके मुख और गुदा से रक्त भी आता था। वैद्य डाक्टर मूलचन्द के रोग का ठीक

निदान न कर सके। अन्त में एक्सरे से उसके पेट में कोई वस्तु मालूम हुई। पेट का जब ऑपरेशन किया गया तब साढ़े पांच छटांक का मेंढक निकला।

इस तरह की अनेक घटनाएं बिना छाना हुआ जल पीने से हो जाया करती हैं। अतः पानी को सदा दोहरे कपड़े से छान कर ही पीना चाहिये। तार की जाली से छाने हुये जल में बाल निकल जाता है। वस्त्र से छानने पर ऐसा नहीं होता।

जल को छान कर उसकी जिवानी (छाने हुए जल के जीव) उसी स्थान पर (कुएं, बावड़ी, नदी में) पहुँचा देनी चाहिये।

बिना छने हुये जल की एक बूंद में एक डाक्टर ने कीटाणुओं का चित्र लेकर ६५ हजार जीव गिने हैं। इस महान् हिंसा से बचने का उपाय केवल एक ही है और वह है कपड़े से छान कर जल पीना।

—=:o:=—

# स्तुति

मान्य पूज्य व्यक्ति की प्रशंसा में बढ़ा चढ़ा कर वचन कहना 'स्तुति' है। जैसे दास 'नौकर' अपने स्वामी को अन्नदाता, प्राण-रक्षक, जीवन आधार आदि शब्द कहकर उसकी प्रशंसा करता है।

अर्हन्त भगवान् सबसे अधिक पूज्य हैं, अतः उनकी प्रशंसा में भक्ति के साथ जो विनय-भरे शब्द मुख से निकलते हैं उसे भगवान् की 'स्तुति' कहते हैं।

वैसे अर्हन्त परमात्मा में अनन्त, (सीमा-रहित बेहद) गुण हैं, उन गुणों का पूर्ण वर्णन जीभ के द्वारा नहीं हो सकता, उनको बढ़ा-चढ़ा कर कहने की बात तो दूर रही, उन सबका साधारण कथन भी असंभव है, अतः वास्तव में तो अर्हन्त भगवान की स्तुति की नहीं जा सकती किन्तु फिर भी भक्तिवश भगवान्

के गुणगान में जो भी शब्द मुख से निकलते हैं उसे स्तुति, स्तवन, स्तोत्र विनती कहते हैं।

स्तुति से वचन-योग पवित्र कार्य में लगा रहता है, मानसिक भाव भगवान की ओर आकर्षित होते हैं तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करने आदि भक्ति की क्रिया में शरीर की चेष्टा होती है। इस तरह मन-वचन-काय (तीनों योग) शुभ कार्य में लगे रहते हैं।

—:o:—

## भक्त और भगवान्

भक्ति करते समय भक्त अपने आपको भगवान का एक विनीत विश्वासी सेवक समझता है, अतः वह अपने दुःख संकट मेट कर अपने उद्धार की भावना, प्रार्थना और याचना भगवान् से करता है। उस समय वह 'दासोऽहं' यानी—मैं तेरा दास हूं, इस अवस्था में होता है।

इस के आगे जब उसकी दृष्टि भगवान् का गुणगान करते हुए, भगवान् का चिन्तन करते हुए अपनी आत्मा की ओर जाती है, उस समय वह थोड़े से अन्तर के साथ अपने आपको भगवान् सरीखा समझने लगता है कि···जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण भगवान् में हैं वे ही गुण मेरी आत्मा में भी हैं, अन्तर केवल इतना है कि मेरे गुण कर्म-पटल से छिपे हुए हैं, विकसित नहीं हैं और भगवान् के आत्मा में उनका पूर्ण विकास हो गया है, इसी कारण मैं एक साधारण संसारी आत्मा बना हुआ हूं और भगवान् 'परम-आत्मा' हो गये हैं।

ऐसा चिन्तन करते हुए वह अपने लिये 'सोऽहं' की भावना करता है, जिसका अभिप्राय पर्युक्त है। यानी—सः (वह

परमात्मा) अहम् (मैं हूँ)।

'सोऽहं' की भावना लेकर जब वह संसार, शरीर तथा विषय भोगों से रागभाव त्याग कर विरक्त हो जाता है। एकान्त निर्जन प्रान्त में संसार के समस्त संकल्प-विकल्प छोड़कर आत्म-साधना में लग जाता है, अनेक कष्ट उपद्रवों के आने पर भी अपने ध्येय से विचलित नहीं होता, शरीर की ममता जिसके विलीन हो जाती है, आत्म-ध्यान में ऐसा लीन होता है कि उसके सिवाय उसकी चित्तवृत्ति अन्यत्र कहीं भी नहीं जाने पाती, उस समय उसके नवीन कर्मबन्धन नगण्य (न कुछ) सा हो जाता है और पूर्व-संचित महान् कर्म विनष्ट होने लगते हैं, जिससे कि सूक्ष्म राग द्वेष आदि विकार भी हरे भरे नहीं होने पाते, बल्कि सूखे पत्ते की तरह स्वयं झड़ जाते हैं।

तब उसकी भावना होती है केवल 'अहम्' (मैं परम शुद्ध, पूर्ण शुद्ध परमात्मा हूं)। उसकी यह भावना कोरी भावना नहीं रहती, पूर्ण शुद्ध होकर वह यथार्थ में (सचमुच) 'परमात्मा' बन जाता है।

इस तरह भगवान् का सच्चा भक्त 'दासोऽहं' से 'सोऽहं' बनता है और 'सोऽहं' से 'अहम्' होकर भगवान् की भक्ति के सहारे अन्त में स्वयं 'भगवान् बन जाता है।

भगवान् भी वही सच्चा है जो अपने भक्त को अपने समान भगवान् बना दे और भक्त भी वही सच्चा है जो भगवान् की भक्ति के सहारे अन्त में स्वयं 'भगवान्' बन जावे।

इसी कारण स्तुतियों में जिनेन्द्र भगवान को दुःख दूर करने वाला, सुख, सम्पत्ति, स्वर्ग, मोक्ष देने वाला बतलाया है। और अपने सुख कल्याण के लिये उनसे तरह-तरह की मांग की है।

दूसरी बात यह है कि भक्ति करते समय भक्त पुरुष भगवान् के बहुत निकट अपनी गाढ़ी लगनभरी भावना से पहुँच कर अपने

आपको भुला-सा देता है उस समय वह कभी अपने आपको भगवान् का विश्वासी चाकर समझ लेता है, कभी अपने भीतर पुत्र की और भगवान् में पिता की भावना कर बैठता है, कभी वह भगवान् को अपना हितकारी मित्र मान बैठता है और उस धुन में उसको यथार्थ सिद्धान्त की बात ध्यान में नहीं रहती। वह तो भगवान् को सिद्धालय (मोक्ष) में नहीं समझता बल्कि बिल्कुल अपने सामने बैठा हुआ समझता है। इसलिये अपना हृदय खोलकर उनसे दो-दो बातें करता है। उसी बात-चीत में अपना सारा रोना-धोना, सारी इच्छा, सारे उद्देश भगवान् को सुना देता है, क्योंकि उस समय उसको अपने सामने भगवान् के सिवाय अन्य कोई चीज दिखाई नहीं देती।

महाकवि धनञ्जय भगवान् का पूजन कर रहे थे, उस समय उनके पुत्र को सांप ने काट खाया, सांप का विष चढ़ गया और वह अचेत होगया। यह देख कर उन की पत्नी घबड़ा गई। उसने नौकर द्वारा पंडित धनञ्जय को इस बात की खबर भेजी और घर पर तत्काल पहुँच जाने को कहा। नौकर ने पूजा करते हुए धनञ्जय से वैसा कह दिया। धनञ्जय अपनी पूजा में लीन थे, उन्होंने उस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया, उनका उस समय सबसे अधिक राग भगवान् के साथ जुड़ा हुआ था।

धनञ्जय जब घर न पहुँचे, तब दूसरी बार उन की स्त्री ने फिर खबर भेजी और तुरन्त आने की प्रार्थना की, परन्तु इस बार की खबर को भी इन्होंने अनसुना कर दिया, भगवान् की पूजा से उनका ध्यान न हट सका और वे घर पर न पहुँचे।

तब उस पुत्र-शोक में उनकी स्त्री को उन पर बहुत क्रोध आया और झुंझलाकर उस अचेत पुत्र को मन्दिर में ले आई। मन्दिर में लाकर उसने पूजा करते हुए धनञ्जय कवि के सामने

उसे रख दिया और क्रोध के उबाल में दो चार खरी खोटी बातें भी उन्हें सुना डालीं। उस बेचारी को क्या पता था कि उसका पति भगवान के निकट पहुँचा हुआ है, अपनी तीव्र भावना के कारण इन सांसारिक विचारों से बहुत दूर पर खड़ा है।

पुत्र को सामने पड़ा देख कर धनञ्जय की भक्ति में कुछ बाधा पड़ी, कुछ ध्यान उस ओर गया। परन्तु ध्यान तत्काल फिर भगवान् की भक्ति में लीन हो गया। उनकी स्त्री तथा मन्दिर में आये हुए अन्य स्त्री पुरुष धनञ्जय की ऐसी भक्ति में लीनता देखकर चकित (हैरान) रह गये।

कवि धनञ्जय ने उसी समय विषापहार स्तोत्र बनाया और स्तवन करते हुए भगवान् से कहने लगे—

विषापहारं मणिमौषधानि,
मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति,
पर्यायनामानि तवैव तानि ॥१४॥

यानी—शरीर का विष उतारने के लिये, जनता मणि, औषधि, मन्त्र तन्त्र को ढूंढने में दौड़ती, भागती, फिरती है, उसको यह नहीं मालूम, कि ये सब आप के ही दूसरे नाम हैं। यानी—विष उतारने वाले तो सभी कुछ आप हैं।

उनकी पवित्र भावना का यह प्रभाव हुआ कि उनका पुत्र इस तरह उठकर खड़ा हो गया, जैसे गहरी नींद से जागा हो, धनञ्जय फिर भी भगवान् की स्तुति में लीन रहे और उन्होंने स्तुति के २६ पद्य और भी पढ़ कर अपनी भक्ति भावना को समाप्त किया।

ऐसी ही बात श्री मानतुङ्ग आचार्य के साथ हुई, वे बन्दीघर

(जेल) में पड़े हुए थे। अन्य उपाय न देखकर उन्होंने वहीं पर प्रभावशाली भक्तामर स्तोत्र की रचना कर डाली। स्तोत्र के ४६ वें पद्य में वे बोले—

> आपादकण्ठमुरुशृङ्खल-वेष्टितांगाः,
> गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः।
> त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
> सद्यः स्वयं विगतबन्ध-भयाः भवन्ति ॥

यानी— कोई मनुष्य पैर से गर्दन तक जंजीरों से बांधकर बन्दीखाने में डालदिया गया हो, मोटी लोहे की बेड़ियों से उस बेचारे की जांघें छिल गई हों। किन्तु यदि वह आपके पवित्र नाम का हृदय से स्मरण करे तो उसके सब बन्धन स्वयं टूट जाते हैं।

इस श्लोक के पढ़ते ही वे बाहर बिना पहरेदार के द्वार खोले दैवी शक्ति द्वारा बन्दीघर (जेल) से बाहर निकल आये।

वादिराज मुनि को कोढ़ रोग हो गया था, राजसभा में ब्राह्मण मन्त्री ने एक जैन सभासद (दरबारी) की हंसी उड़ाते हुए राजा से मखौल में कहा कि 'इस के गुरु कोढ़ी हैं'।

आचार्य वादिराज के भक्त को बहुत बुरा लगा और भावुकता के आवेश (जोश) में कह बैठा कि नहीं, मेरे गुरु का शरीर तो सोने के समान निर्मल है। राजा ने कहा कि अच्छा, कल सवेरे उनके दर्शन करेंगे, तब मालूम हो जायगा कि तुम दोनों में से किसकी बात सत्य है।

वह जैन सभासद राजसभा से निकल कर सीधा वादिराज मुनि के पास पहुँचा और राजसभा की सब बात कह सुनाई। वादिराज बड़ी गम्भीरता से बोले 'जाओ घर आराम करो, कुछ

इत्यादि प्रकार के भाव स्तुतिकारों ने रख दिये हैं। सबसे प्रथम स्तुतिकार (१८०० वर्ष पहले के, स्तुति बनाने की नींव डालने वाले), मुख्य परीक्षा-प्रधानी, भारत में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट तार्किक विद्वान् श्री समन्तभद्र आचार्य ने अपने स्वयम्भूस्तोत्र में भी भक्ति की इसी पद्धति को अपनाया है।

सारांश यह है कि भक्ति के समय भगवान् में अनुराग प्रधान होता है, सिद्धान्त प्रधान नहीं होता। अनुराग के बिना भक्तिभाव पूजन, स्तवन, विनय नहीं बन पाता।

## भक्ति और सिद्धान्त

मुनि आत्मध्यान द्वारा राग, द्वेष, मोह, ममता, घृणा, क्रोध, काम, मद, अज्ञान आदि विकार भावों से अपने आत्मा को पूर्ण शुद्ध करके जिनेन्द्र भगवान् होते हैं, इस कारण उनको न किसी से प्रेम होता है, न किसी से द्वेष भाव, न किसी से वे प्रसन्न होते हैं और न किसी से (नाराज) अप्रसन्न होते हैं। इस दशा में यदि कोई व्यक्ति उनकी पूजा, प्रशंसा, स्तुति करे तो वे उसको प्रसन्न (खुश) हो कर कुछ पारितोषिक (इनाम) नहीं देते, तथा यदि कोई मनुष्य जिनेन्द्र भगवान् की निन्दा करे तो उन्हें क्रोध नहीं आता और इसी कारण वे निन्दा करने वाले को कुछ दण्ड नहीं देते हैं।

प्रश्न—इस दशा में उनका दर्शन, पूजन, स्तवन, भक्ति करने से क्या लाभ है?

उत्तर—जीव को सुख दुख कोई दूसरा व्यक्ति नहीं देता, उसके संचित (बांधे) किये हुये शुभ अशुभ कर्म का उदय ही उसे सुख दुख देता है। जीव अच्छे बुरे कार्य बाहरी पदार्थों के निमित्त से करता है। जिनेन्द्र भगवान की शान्त, निर्भय, प्रसन्न निर्विकार वीतराग प्रतिमा का दर्शन करने से, उन के शुद्ध गुणों

## चित्र

जिस तरह अप्रतिष्ठित प्रतिमा अपूज्य होती है उसी तरह कागज, वस्त्र, टीन, लकड़ी तथा दीवाल पर बनाया गया भगवान् का चित्र भी पूज्य नहीं होता, इसलिये ऐसे किसी चित्र को न तो हाथ जोड़ना चाहिये, न सिर झुकाकर नमस्कार करना चाहिये, न अभिषेक पूजन करना तथा अर्घ चढ़ाना चाहिये।

## खंडित प्रतिमा

प्रतिमा का यदि कोई ऐसा अंग भंग हो जावे जिससे उसकी वीतराग मुद्रा में अन्तर न पड़े—जैसे कि उंगली का कुछ अंश खण्डित हो जावे, चरण का अंश टूट जावे (इत्यादि) तो वह प्रतिमा अपूज्य नहीं होती। यदि प्रतिमा की ग्रीवा (गर्दन) नाक, आंख, आदि ऐसे अंगोपांग भंग हो जावें जिनसे उनकी वीतराग मुद्रा में अन्तर आ जावे तो वह प्रतिमा पूजनीय नहीं रहती। ऐसी प्रतिमा को अगाध जल वाले नदी, समुद्र आदि में निक्षेप कर देना चाहिये।

## मूर्ति पूजा का आरम्भ

वीतराग भगवान् की मुक्ति हो जाने पर उनका साक्षात् दर्शन होना असम्भव है, अतः उनके दर्शन की भावना सफल करने के लिये भगवान् की वीतराग प्रतिमा बनाकर उसके दर्शन पूजन करके अपना चित्त पवित्र करने की प्रथा अनादि समय से है।

इस युग की दृष्टि से सबसे पहले आज से करोड़ों वर्ष पहले भगवान् ऋषभनाथ के बड़े पुत्र प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत ने जिनके नाम पर इस देश का नाम 'भारत' रक्खा गया—कैलाश पर्वत पर भगवान ऋषभनाथ के मुक्त हो जाने के बाद मन्दिरों का निर्माण कराया था और उनमें भूत भविष्यत् तथा वर्तमान काल के २४-२४ तीर्थंकरों की प्रतिमाएं विराजमान की थीं।

भगवान् ऋषभनाथ के अरहंत हो जाने के पश्चात् उनकी जीवन-मुक्त अवस्था में भी धर्माराधन के लिये भरत ने मूर्ति-निर्माण कराया था।

मोहनजोदारो (सिन्ध) की पृथ्वी खोदते समय जो साढ़े पांच हजार वर्ष पुराना नगर निकला है उसमें प्लेट नं० २ की ३-४-५ नं० की सीलों पर नग्न खड़े आकार में बैल के चिन्ह-सहित भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति अंकित है।

खण्डगिरि उदयगिरि (उड़ीसा) में हाथी गुफा पर जो महाराजा खारवेल का शिलालेख है उनमें भी मगध के राजा से आदि जिन (भगवान ऋषभनाथ) की मूर्ति (मगध जीत कर राजा खारवेल द्वारा) वापिस लाने का उल्लेख है। मूर्ति को मगध का पूर्वज राजा तीन सौ वर्ष पहले महाराजा खारवेल के पूर्वजों से छीनकर ले गया था। इस तरह वह मूर्ति ढाई हजार वर्ष से भी पुरानी थी।

तेरपुर (धाराशिव-उस्मानाबाद) की गुफाओं में राजा करकुण्ड की बनवाई हुई भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियां भगवान् महावीर से पहिले की मौजूद हैं, यह राजा भगवान् पार्श्वनाथ के तीर्थंकाल में हुआ है। इस तरह से भगवान् अरहंत की वीतराग प्रतिमा बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। जहां भी भारत में खुदाई होती है, प्रायः वहां प्राचीन नग्न अर्हन्त भगवान् की मूर्तियां प्राप्त होती हैं।

सम्राट चन्द्रगुप्त के राजकाल में जो १२ वर्ष का अकाल पड़ा था, उस समय उत्तर प्रान्त में रहे आये कुछ जैन साधु कपड़े पहनने लगे थे, अकाल समाप्त हो जाने पर भी उनमें से जब बहुतों ने कपड़ा पहनना न छोड़ा तब विक्रम सम्वत् १३६ में श्वेताम्बर संघ स्थापित हुआ।

श्वेताम्बर भाई भी विक्रम सं० की ६ वीं शताब्दी तक वीतराग नग्न मूर्ति ही बनाकर पूजा करते रहे। उस समय एक

प्रतिमा पर अधिकार करने के लिये दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय का परस्पर विवाद हो गया तब से श्वेताम्बर भाइयों ने अपनी श्वेताम्बरीय प्रतिमाओं की अलग पहचान रखने के लिये वीतराग प्रतिमा पर लंगोट का चिन्ह बनाना प्रारम्भ कर दिया। बहुत दिनों तक वे ऐसा ही करते रहे। उसके बाद वे मूर्ति में मुकुट, हार, धोती आदि भी बनवाने लगे। उदयपुर के मूर्ति-संग्रहालय में वैसी श्वेताम्बर मूर्तियां हैं।

## पूज्य

जगत में आध्यात्मिक सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये पूजा आराधना करने योग्य तीन पदार्थ हैं—१. देव, २. गुरु, ३. शास्त्र।

अर्हन्त, सिद्ध भगवान् परमशुद्ध परमात्मा हैं, समस्त देव, इन्द्र, मनुष्य उन को पूज्य मान कर उनकी विनय पूजन करते हैं, अतः अर्हन्त और सिद्ध परम पूज्य देवाधिदेव हैं।

अर्हन्त भगवान् की दिव्य वाणी जिन ग्रन्थों में लिखी है वे परम पूज्य शास्त्र हैं।

संसार शरीर तथा विषय भोगों से विरक्त, आरम्भ-परिग्रह के त्यागी आत्म-शुद्धि में तत्पर आचार्य, उपाध्याय और साधु तथा ऐलक क्षुल्लक पूज्य गुरु हैं।

जो सबसे उच्च पद में विराजमान हैं उन्हें 'परमेष्ठी' कहते हैं परमेष्ठी ५ हैं—१. अर्हन्त, २. सिद्ध, ३. आचार्य, ४. उपाध्याय ५. सर्व साधु।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाति कर्मों का क्षय करके जिनको केवलज्ञान (अनन्त ज्ञान) अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बल प्राप्त हो जाता है। जन्म, जरा, (बुढ़ापा), मृत्यु तृषा (प्यास), क्षुधा (भूख), आश्चर्य (अचम्भा), पीड़ा, खेद (थकावट), रोग, शोक, अहंकार, मोह,

४. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग—सदा ज्ञान का अभ्यास करना।
५. संवेग—संसार से भय, धर्म तथा धर्म के फल में अनुराग।
६. शक्तितस्त्याग—शक्ति अनुसार दान करना।
७. शक्तितस्तप—शक्ति के अनुसार तप करना।
८. साधु समाधि—समाधि सहित मरण तथा साधुओं का उपसर्ग दूर करना।
९. वैयावृत्य-करण—रोगी, बाल वृद्ध मुनि की सेवा करना।
१०. अर्हन्त भक्ति—अर्हन्त भगवान की भक्ति करना।
११. आचार्य भक्ति—मुनि संघ के नायक आचार्य की भक्ति करना।
१२. बहुश्रुत भक्ति—उपाध्याय की भक्ति करना।
१३. प्रवचन भक्ति—शास्त्र की भक्ति करना।
१४. आवश्यकापरिहाणि—छह आवश्यक क्रियाओं का निर्दोष आचरण।
१५. मार्ग प्रभावना—उपदेश, शंका समाधान, तपस्या आदि से धर्म का प्रभाव फैलाना।
१६. प्रवचनवात्सल्य—साधर्मी जन से गाढ़ा प्रेम।

इन १६ भावनाओं में से दर्शन-विशुद्धि भावना का होना आवश्यक है, उसके साथ शेष १५ भावनाओं में से १-२-३-४ आदि जितनी भी हों या सभी हों तो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो जाता है।

## तीर्थंकर प्रकृति का प्रभाव

तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से तीर्थंकर होने वाले महान् व्यक्ति के माता के गर्भ में आते समय माता को शुभ १६ स्वप्न आते हैं, गर्भ में आने से ६ मास पहले देवियां माता की सेवा करने लगती हैं। तीर्थंकर के गर्भ में आने के बाद जन्म समय, मुनि-

दीक्षा लेते समय, केवलज्ञान हो जाने पर तथा मोक्ष हो जाने पर देव महान् उत्सव करते हैं, उस उत्सव में सम्मिलित होने वाले तथा उत्सव के देखने वालों के हृदय में धर्म के फल का प्रभाव अंकित होता है जिससे कि उनमें से अनेकों को सम्यग्दर्शन होता है अनेकों को शुभ कर्म-बन्ध आदि आत्म-कल्याण प्राप्त होता है इस कारण तीर्थंकर के 'गर्भ' 'जन्म' 'तपग्रहण' केवल ज्ञान उदय' और 'निर्वाण' होने वाले देव-उत्सवों को कल्याणक कहते हैं।

भरत, ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के पांचों कल्याणक होते हैं किन्तु विदेह क्षेत्रों में केवली, श्रुतकेवली की परम्परा सदा चालू रहती है, अतः वहां जो मनुष्य पूर्वभव से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लेता है उसके पांच कल्याणक होते हैं। किन्तु कोई व्यक्ति गृहस्थ दशा में तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करता है तो उसके तपग्रहण, केवलज्ञान उदय और मुक्ति गमन समय के तीन ही कल्याणक होते हैं तथा जो पुरुष मुनि अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके उसी भव में उसके उदय से तीर्थंकर बनता है उसके ज्ञान और निर्वाण ये दो कल्याणक ही होते हैं। यानी विदेह क्षेत्र में तीन तथा दो कल्याणक वाले भी तीर्थंकर होते हैं।

## तीर्थंकर प्रकृति का उदय

यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से गर्भ में आने से भी ६ माग पहले से तीर्थंकर के माता पिता के घर, उस नगर में रत्न-वर्षा आदि उत्सव होने लगते हैं, जन्म होने पर तथा मुनि दीक्षा ग्रहण करते समय भी महान उत्सव होते हैं किन्तु उस समय तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होता है, तीर्थंकर प्रकृति का उदय अर्हन्त अवस्था में—केवलज्ञान हो जाने पर होता है। तीर्थंकर

प्रकृति के उदय से तीर्थंकर की इच्छा न होते हुए भी स्वयं उनके सर्वांग मुख से समस्त जीवों का कल्याण करने वाला, सत्य मार्ग प्रकट करने वाला, यथार्थ सिद्धान्त का प्रकाशक दिव्य उपदेश होता है।

## समवशरण

तीर्थंकर के उस दिव्य उपदेश से लाभ लेने के लिये "समवशरण" नामक महान् सुन्दर, विशाल सभा-मण्डप देवों द्वारा बनाया जाता है, उसके बीच में तीर्थंकरों का ऊंचा आसन होता है, उसके चारों ओर १२ कक्ष (विशाल कमरे) बने होते हैं, इन कक्षों में देव-देवियां, पुरुष-स्त्रियां, साधु-साध्वियां, पशु-पक्षी सुविधा के साथ बैठ कर तीर्थंकर का उपदेश सुनते हैं। तीर्थंकर की वाणी को देव सर्व भाषामय कर देते हैं, अतः वहां पर बैठे हुए प्रत्येक प्राणी उसे अपनी अपनी भाषा में समझ लेते हैं। वहां सबको समान रूप से शरण मिलती है, किसी प्रकार भी छोटे-बड़े रंक राजा का भेद भाव नहीं होता, इसलिए यह विशाल सभा-मण्डप का 'समवशरण' कहलाता है।

## साधारण केवली

तीर्थंकर के सिवाय अन्य केवल-ज्ञानियों के लिये भक्त देवों द्वारा केवल "गन्धकुटी" नामक उच्च आसन बनाया जाता है, समवशरण नहीं बनाया जाता। उनका उपदेश बिना समवशरण के होता है।

कोई मूक केवली भी होते हैं जो मौन रहते हैं, उनका उपदेश नहीं होता है।

## तीर्थंकरों के ४६ गुण

अन्य महापुरुषों या केवलियों की अपेक्षा तीर्थंकरों में निम्न लिखित ४६ गुण होते हैं।

धर्मचक्र आगे रहै, पुनि वसु मंगल सार ।
अतिशय श्री अरहंत के, ये चौंतीस प्रकार ॥८॥

यानी—१. भगवान् की वाणी को मगध देव सर्व जीवों की भाषामय कर देते हैं। २. भगवान् के निकट आये हुये जीव शान्त होकर परस्पर प्रेम के साथ बैठते हैं। ३. समस्त दिशायें साफ होती हैं। ४. आकाश स्वच्छ होता है। ५. देव उस स्थान का वायुमण्डल ऐसा विचित्र कर देते हैं जिससे विभिन्न ऋतुओं में फलने-फूलने वाले वहां के सभी वृक्षों पर फल-फूल आ जाते हैं। ६. वहां की पृथ्वी को दर्पण की तरह स्वच्छ कर देते हैं। ७. चलते समय देव भगवान् के चरणों के नीचे सुवर्णमय कमल के फूल बनाते जाते हैं। ८. देव आकाश में भगवान् की जयकार बोलते हैं। ९. सुगन्धित धीमी वायु चलती है। १०. सुगन्धित छोटे जलकण (बूंदें) आकाश से गिरते हैं। ११. वहां की पृथ्वी पर कांटे, कंकड़ आदि चुभने वाले पदार्थ नहीं रहने पाते। १२. चारों ओर हर्ष का वातावरण हो जाता है। १३, सूर्य समान चमकदार धर्मचक्र (पहिये के आकार का पदार्थ) भगवान् के पास देव रखते हैं, विहार समय देव उसे लेकर भगवान् के आगे-आगे चलते हैं। १४. छत्र, चमर, ध्वजा, दर्पण, स्वस्तिक (सांथिया) टोणा, झारी और कलश ये आठ मंगलीक (शुभ) द्रव्य देव भगवान के निकट रखते हैं।

आठ प्रातिहार्य (दिव्य महत्वशाली पदार्थ)

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार ।
तीन छत्र शिर पर लसें, भामण्डल पिछवार ॥९॥

दिव्यध्वनि मुखते खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरैं चौंसठ चंवर जख, बाजे दुन्दुभि जोय॥१०॥

यानी—१. भगवान् के निकट अशोक वृक्ष होता है। २. दिव्य सुन्दर सिंहासन (भगवान् उस पर चार अंगुल ऊपर-अधर बैठते हैं), ३. शिर पर तीन छत्र, ४. पीठ पीछे भगवान् की शरीर की कांति का पुञ्जरूप भामण्डल। ५. मुख से दिव्यवाणी प्रकट होना। ६. आकाश से देवों द्वारा फूलों की वर्षा। ७. यक्ष देव भगवान पर ६४ चमर ढोरते हैं। ८. देव मनोहर सुरीला दुन्दुभि बाजा बजाते हैं।

### अनन्त चतुष्टय

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दरश अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अर्हन्त सो इष्ट देव पहचान॥१॥

यानी—१. अनन्तज्ञान, २. अनन्त दर्शन, ३. अनन्त सुख और ४. अनन्त बल।

इन ४६ गुणों में से अनन्त चतुष्टय आदि कुछ गुण अन्य केवलियों में भी होते हैं।

### तीर्थंकरों के चिन्ह

तीर्थंकरों के दाहिने पैर के अंगूठे पर जो चिन्ह होता है वही चिन्ह उस तीर्थंकर की ध्वजा आदि में इन्द्र अंकित कर देता है। प्रतिमाओं पर भी वही चिन्ह अंकित होता है। वर्तमान युग के २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर निम्नलिखित चिन्ह अंकित किये जाते हैं।

१. श्री ऋषभनाथ—बैल
२. श्री अजितनाथ—हाथी
३. श्री सम्भवनाथ—घोड़ा
४. श्री अभिनन्दननाथ—[illegible]
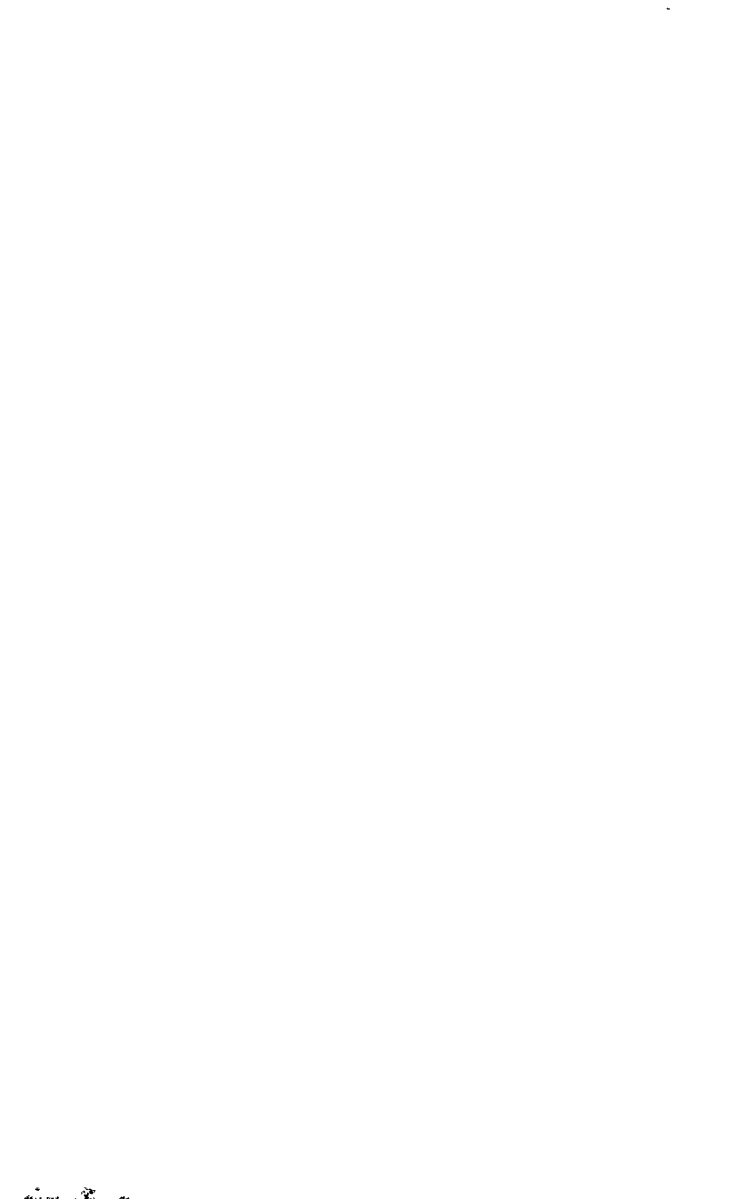
गुण) ८, अव्याबाध (वेदनीय कर्म न रहने से अव्याबाध गुण)।

## आचार्य

मुनि-संघ के नायक, मुनि दीक्षा देने वाले, मुनियों को प्रायश्चित देने वाले 'आचार्य' परमेष्ठी हैं। उनमें अन्य मुनियों के २८ मूल गुणों के सिवाय निम्नलिखित ३६ गुण और विशेष होते हैं।

द्वादश तप दश धर्मयुत, पालें पंचाचार।
षट् आवश्यक त्रिगुप्ति गुण, आचारज पदसार॥ १३

१२. तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति, ये ३६ विशेष गुण आचार्य परमेष्ठी के होते हैं।

### १२ तप

अनशन ऊनोदर करें, व्रतसंख्या रस छोर।
विविक्त शयनासन धरें, काय क्लेश सुठौर॥ १४॥
प्रायश्चित धरि विनययुत, वैयाव्रत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार के, धरें ध्यान मन लाय॥१५॥

१. अनशन (चारों प्रकार के भोजन को त्याग करके उपवास करना) २. 'ऊनोदर' या 'ऊनमोदर्य' (भूख से कम खाना) ३. व्रत परिसंख्यान (भोजन ग्रहण करने के लिये घर दाता आदि का नियम करना) ४. रस परित्याग (दूध, दही, घी, तेल, नमक, खांड (मीठा) इन छः रसों में से किसी एक दो आदि या सब रसों का छोड़ना), ५. विविक्त शय्यासन (एकान्त स्थान में रहना, सोना), ६. कायक्लेश (कष्ट सहकर ध्यान करना) ये

१. मनगुप्ति (मन में बुरे संकल्प विकल्प न आने देना), २. वचनगुप्ति (मौन रखना), ३. काय गुप्ति (निश्चल शरीर करना), ये तीन गुप्ति हैं।

### ६ आवश्यक

समता धरि वंदन करें, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय ॥१८॥

१. सामायिक (समस्त पदार्थों से राग द्वेष छोड़कर समता भाव से आत्मचिन्तन), २. वंदना (पञ्च परमेष्ठी को नमस्कार) ३. स्तुति (पञ्च परमेष्ठी का वचन द्वारा स्तवन), ४. प्रतिक्रमण (लगे हुए दोषों का पश्चात्ताप करना), ५. स्वाध्याय (शास्त्र-अध्ययन करना), ६. कायोत्सर्ग (खड़े होकर ध्यान करना) ये प्रतिदिन अवश्य किये जाने वाले आवश्यक कार्य हैं। ये ३६ गुण आचार्य परमेष्ठी में अन्य साधुओं की अपेक्षा विशेष होते हैं। २८ मूलगुण तो उनके होते ही हैं।

## उपाध्याय परमेष्ठी

मुनि संघ में सब से अधिक ज्ञानी, अन्य मुनियों को पढ़ाने वाले 'उपाध्याय' परमेष्ठी होते हैं। ११, अंग १४ पूर्व (महान् शास्त्रों का) ज्ञान, रूप २५ गुण उपाध्याय परमेष्ठी के हैं।

### ११ अङ्ग

प्रथमहिं आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥१९॥
व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमो, ज्ञातृकथा षट् आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृतदश ठान ॥२०॥

अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक विख्यान।
बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥२१॥

१. आचारांग २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६. ज्ञातृकथा, ७. उपासकाध्ययन, ८. अन्तः-कृतदशांग, ९. अनुत्तरोत्पादक दशांग. १० सूत्रविपाक और ११. प्रश्न व्याकरण, ये ग्यारह अंग शास्त्र हैं।

१४ पूर्व

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्तिनास्तिपरवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद ॥२२॥
छठो कर्मप्रवाद है, सत्यप्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमो प्रत्याख्यान ॥२३॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्व कल्याण महन्त।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकविन्दु है अन्त ॥२४॥

१. उत्पादपूर्व २. अग्रायणी, ३. वीर्यवाद, ४. अस्तिनास्ति प्रवाद, ५. ज्ञान प्रवाद, ६. कर्म प्रवाद, ७. सत्य प्रवाद, ८. आत्म-प्रवाद, ९. प्रत्याख्यान, १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याण पूर्व १२. प्राणवाद, १३. क्रिया विशाल, १४. लोक विन्दुसार ये १४. पूर्वों के नाम हैं। इन ११ अंगों, १४ पूर्वों में भिन्न २ विषयों का विस्तार से विवेचन है। ११ अंग, १४ पूर्वो का पूर्ण ज्ञान श्रुत-केवली को होता है।

## साधु परमेष्ठी

समस्त आरम्भ परिग्रह त्याग कर २८ मूल गुण पालन करने वाले साधु परमेष्ठी हैं।

(नाक), ४. नेत्र (आंख), ५. श्रोत्र (कान), इन पांचों इन्द्रियों को वश करना। १. सामायिक, २. वन्दना, ३. स्तुति, ४ प्रतिक्रमण, ५. स्वाध्याय, ६. कायोत्सर्ग, ये छः आवश्यक हैं, इनका अभिप्राय आचार्य परमेष्ठी के गुणों में छः आवश्यकों के अनुसार है।

१. स्नान का त्याग (कभी स्नान नहीं करते—यदि कभी अशुचि पदार्थ का स्पर्श हो जाय तो निश्चल खड़े होकर कमण्डल का पानी शिर पर से डाल लेते हैं), २ भूमि पर सोना (पलंग विस्तर पर नहीं सोते, ज़मीन, शिला, तख्ते पर एक करवट से सोते हैं), ३. वस्त्र त्याग (लंगोटी तक भी न पहन कर नग्न रहते हैं), ४. केश लोंच (शिर मूंछ दाढ़ी के बालों को अपने हाथों से उपाड़ते हैं—कैंची, छुरा आदि से नहीं बनवाते), ५. एक वार थोड़ा भोजन, ६. दांतुन नहीं करते, ७. खड़े होकर भोजन करना। इस तरह सब २८ मूल गुण साधु मात्र के होते हैं।

—:०:—

# मन्दिर क्या है ?

तीर्थंकर जब अर्हन्त (वीतराग सर्वज्ञ) हो जाते हैं उस समय उनका दिव्य उपदेश कराने के लिये देवों द्वारा 'समवशरण' नामक एक बहुत विशाल और बहुत सुन्दर सभा-मण्डप बनाया जाता है। उस समवशरण के बीच में दिव्य सिंहासन पर (उसके चार अंगुल ऊंचे अधर) भगवान बैठकर उपदेश देते हैं। देव-भक्तिवश उनके शिर पर तीन छत्र लगाते हैं, चमर ढोरते हैं, मंगलीक बाजे बजाते हैं, उनकी पीठ के पीछे भामण्डल होता है। प्रायः उसी के अनुकरण (नकल) रूप में मन्दिर बनाया जाता है। वीतराग प्रतिमा को विराजमान करने के लिये सिंहासन तथा उनके ऊपर छत्र, पीछे भामण्डल, चमर आदि की योजना की जाती है।

अर्हन्त प्रतिमा बनाने की विधि के अनुसार सिंहासन, छत्र, चमर (ढोरते हुए दोनों ओर यक्ष), भामण्डल आदि प्रातिहार्य प्रतिमा के साथ ही उसी धातु के बनने चाहियें, जैसा कि प्राचीन प्रतिमाओं के साथ अनेकों स्थानों पर है। उस दशा में अलग सिंहासन आदि की योजना नहीं की जाती। जिन प्रतिमाओं के साथ उकेरे हुए छत्र आदि नहीं होते उनके लिये छत्र, चमर, भामण्डल, सिंहासन आदि की योजना पृथक् रूप से की जाती है।

इस तरह मन्दिर समवशरण का बहुत कुछ अनुकरण है और छत्र चमर, सिंहासन, भामण्डल आदि प्रातिहार्यों का अनुकरण है। परमात्मा का परम महत्व प्रगट करने के लिये तथा भगवान के ऊपर (छत पर) जनसाधारण का पैर न पड़ने पावे इस अभिप्राय से मन्दिर का ऊंचा शिखर बनाया जाता है। जिससे दूर से देखते ही पूज्य पवित्र स्थान मन्दिर का पता लग जाता है और हृदय में पवित्र भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

## मन्दिर की विनय

भगवान् अर्हन्त प्रतिमा के विराजमान होने से मंदिर एक पवित्र स्थान होता है. उसको नव देवताओं (५ परमेष्ठी, जिन प्रतिमा, जिन मंदिर, जिनवाणी और जिन धर्म) में से एक देवता माना गया है, अतः मंदिर का भी सम्मान करना चाहिये उसको पवित्र समझना चाहिये। जिस तरह तीर्थंकरों, मुनियों आदि के तपश्चर्या करने से तथा मुक्त होने से स्थान पवित्र और पूजनीय तीर्थ स्थान माने जाते हैं, उन स्थानों की वन्दना करते समय उन तीर्थंकरों तथा महापुरुषों का स्मरण, वन्दना करने से मन पवित्र होता है ठीक वैसा ही फल मंदिरों के विनय में

है। मंदिर भी भगवान् की मूर्ति तथा जिनवाणी विराजमान होने से पवित्र स्थान होते हैं, आत्मा को पवित्र करने के लिये धर्म स्थान है। अतः मंदिर का भी सम्मान विनय करना चाहिये।

मंदिर का विनय यही है कि स्नान कर के, पवित्र वस्त्र पहन कर पवित्र भावना से मंदिर में आवें। भगवान् के सामने जाने से पहले पैरों को भी जल से धो लेवें। हर्ष और विनय के साथ भीतर प्रवेश करें और वहां जब तक रहें, भगवान् का दर्शन, स्तवन, पूजन, सामायिक, स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्य करते रहें जब अपनी सुविधा (फुर्सत), समय के अनुसार इन धर्म कार्यों को कर चुकें तब मंदिर के बाहर आ जावें। शान्ति के साथ वहां से चले आवें।

मंदिर में घर गृहस्थाश्रम की चर्चा करना, किसी व्यक्ति की निंदा-प्रशंसा करना, असत्य बोलना, चोरी करना, किसी स्त्री पुरुष को कुदृष्टि से देखना, व्यर्थ बकवाद करना, थूकना, भोजन करना, खेलना आदि कार्य कभी न करने चाहियें। ऐसे कार्य करने से बहुत पाप-बन्ध होता है।, धर्म साधन के लिये मंदिर में आये हुये अन्य स्त्री पुरुषों को भी क्षोभ होता है, अतः मंदिर की पवित्रता सुरक्षित रखने के लिये वहां कोई अनुचित बात न करनी चाहिए।

—:o:—

## अकृत्रिम चैत्यालय

जगत् में बहुत से ऐसे मंदिर भी हैं जिनको किसी मनुष्य ने नहीं बनाया, अनादि समय से चले आ रहे हैं। उनको "अकृत्रिम चैत्यालय" कहते हैं। उन अकृत्रिम चैत्यालयों में अर्हन्त भगवान की बहुत मनोहर प्रतिमाएं विराजमान हैं किसी तीर्थंकर विशेष की प्रतिमाएं नहीं है।

# दर्शन की विधि

भगवान् के सामने जाते ही बहुत विनय के साथ हाथ जोड़ कर सिर झुकावे, णमोकार मन्त्र पढ़कर कोई स्तुति, स्तोत्र का कोई श्लोक छन्द पढ़कर हाथ में लाये हुए चावल चढ़ावें। फिर पृथ्वी पर अष्टांग (लेटकर) अथवा पंचांग (घुटने के बल बैठ कर-दो पैर, दो हाथ, सिर—पांच अंग) नमस्कार करे यानी—घुटने के बल बैठकर, जुड़े हुए हाथों को तथा मस्तक को पृथ्वी से लगावे—धोक देवे। दो हाथ, दो पैर, छाती, सिर, कमर और पीठ ये आठ अंग माने गये हैं। अष्टांग नमस्कार में इन सभी अंगों को झुकाकर नमस्कार किया जाता है।

## प्रदक्षिणा

धोक देने के बाद हाथ जोड़कर खड़ा हो जावे और मन्दिर में स्पष्ट शुद्ध उच्चारण के साथ संस्कृत भाषा का या हिन्दी का स्तोत्र पढ़ना आरम्भ करे, हाथ जोड़ कर स्तोत्र पढ़ता हुआ अपनी बांयी ओर से चलकर वेदी की चारों-ओर तीन प्रदक्षिणा दे। तदनन्तर स्तोत्र पूरा कर लेने पर फिर पंचांग या अष्टांग नमस्कार पूर्वक धोक देवें।

## ध्यान रखने योग्य बातें

दर्शन करते समय अपनी दृष्टि (निगाह) भगवान् की नासिका पर ही रखे, अन्य कोई वस्तु न देखें। इस समय स्तोत्र में निमग्न होकर, ऐसा तन्मय होजावे कि [illegible] में अन्य कोई विचार न आने पावे। भगवान् की मूर्ति को एकटक होकर देखे और भावना करे कि जैसी भगवान की आकृति (मूर्ति) है वैसी ही शान्ति वीतरागता मेरे आत्मा में प्रगट हो। जैसे भगवान् सिंहासन, छत्र, चंवर आदि विभूति रहते हुए भी उससे विरक्त

# पूजन

अपने चित्त में भगवान् के गुणों का विशेष रूप से मन, वचन, काय द्वारा कथन, चिन्तन करने के अभिप्राय से जल, चन्दन, अक्षत (बिना टूटे चावल), पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल इन द्रव्यों द्वारा पूजन किया जाता है। पूजन करते समय भूख, प्यास, मोह, अज्ञान, ज्ञानावरण आदि कर्म सांसारिक सन्ताप, काम वासना को नष्ट करने, अविनश्वर मुक्ति पद प्राप्त करने की पवित्र भावना से जल आदि द्रव्य भगवान् के सामने चढ़ाये जाते हैं।

## पूजन के अंग

प्रथम भगवान् का शुद्ध जल से 'अभिषेक' करना, फिर पुष्प चढ़ाते हुए ठौने में 'आह्वान' (बुलाने की क्रिया—अत्र अवतर अवतर रूप से), फिर 'स्थापना' (अत्र तिष्ठ तिष्ठ रूप से ठौने में पुष्प चढ़ाते हुए भगवान् के स्थापन की क्रिया) तदनन्तर 'सन्निधीकरण' (अत्र मम सन्निहितो भव भव कहते हुए हृदय के निकट करने के लिये), ठौने में पुष्प क्षेपण करना होता है।

इतना करने के पीछे अष्ट द्रव्यों को जो क्रमशः जल आदि द्रव्यों के छन्द पढ़कर 'ॐ ह्रीं' आदि मन्त्रों द्वारा चढ़ाया जाता है, सो 'पूजन' है। समस्त पूजन कर लेने के अनन्तर शान्तिपाठ पढ़कर ठौने में पुष्प चढ़ाते हुए पूजन की समाप्ति करना 'विसर्जन' है। इस तरह अभिषेक, आह्वान, स्थापना, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन ये पूजा के अंग हैं।

## अंग शुद्धि

पूजन करने के लिये शुद्ध जल से स्नान करके शुद्ध धोती दुपट्टा पहनना चाहिये। अधोवस्त्र (धोती) और उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) अलग २ होना चाहिये। धोती का ही भाग नहीं ओढ़ना

चाहिये। दुपट्टा सिर पर ओढ़ लेना चाहिए। कुएं का जल शुद्ध होता है उसकी जिवानी भी पहुँचाई जा सकती है। अतः पूजन की सामग्री कुएं के जल से धोनी चाहिये।

## दिशा

पूर्व और उत्तर दिशा शुभ मानी गई हैं। सूर्य का उदय पूर्व दिशा में होता है, समवसरण में तीर्थंकर का मुख पूर्व दिशा की ओर होता है, अतः यह दिशा शुभ है। उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत है जिस पर कि चारों दिशाओं में १६ अकृत्रिम जिनालय हैं, तीर्थंकरों का जन्म-अभिषेक भी सुमेरु पर्वत पर होता है। विदेह क्षेत्रों में सदा तीर्थंकर होते हैं, वह विदेह क्षेत्र उत्तर दिशा में है। इत्यादि कारणों से उत्तर दिशा को शुभ माना जाता है। अतः सामायिक, पूजन आदि शुभ कार्य करते समय जहां तक हो सके पूर्व या उत्तर दिशा की ओर अपना मुख रखना चाहिये। वेदी तथा मन्दिर का द्वार भी पूर्व या उत्तर दिशा की ओर रक्खा जाता है।

भगवान् का मुख यदि पूर्व दिशा की ओर हो तो पूजन करते समय भगवान् के दाहिनी ओर खड़े होने से भक्त-पुजारी का मुख स्वयं उत्तर दिशा की ओर हो जाता है। जहां तक हो सके पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके पूजन आदि शुभ कार्य करने चाहिये।

## अभिषेक के अनन्तर

अभिषेक कर लेने के पश्चात् अष्ट द्रव्य (जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, और फल) थाल में सजाकर रखना चाहिये एक अन्य खाली थाल में केशर, चन्दन से स्वस्तिक (साथिया) बनाकर सामग्री चढ़ाने के लिये रखना चाहिये। पूजा ठौने पर भी स्वस्तिक बनाकर उस ठौने को थाल

'वन्दे भावनव्यन्तरद्युतिवरस्वर्गामरावासगान्'

इस शुद्ध दूसरी पंक्ति का अर्थ प्रकरण के अनुसार अकृत्रिम चैत्यालयों का विवरण देते हुए यों है—

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा कल्पवासी देवों के (विमानवर्ती) चैत्यालयों की वन्दना करता हूँ।

अतः प्रत्येक भाई को अपना पूजन पुस्तक में अकृत्रिम चैत्यालय पूजा की यह पंक्ति सुधार करके "विसर्जन" का ठीक अभिप्राय पूर्व लिखे अनुसार समझना चाहिये।

पूजन के विषय का विशेष विवरण 'पूजन रत्नाकर' पुस्तक में दिया गया है, वहां से पढ़कर ज्ञात करें।

## अभिषेक करने का उद्देश

तीर्थंकर के जन्म समय सुमेरु पर्वत पर तीर्थंकर का देवों के द्वारा अभिषेक होता है, किन्तु अर्हन्त रूप में प्रतिष्ठित प्रतिमा का वह जन्म-अभिषेक तो होता नहीं और न अर्हन्त हो जाने के बाद तीर्थंकर भगवान का समवशरण आदि में कहीं कभी किसी के द्वारा अभिषेक होता है। अतः प्रतिमा का अभिषेक तीर्थङ्कर की किसी घटना का अनुकरण नहीं है। इसी कारण अभिषेक करते समय जन्म कल्याणक की कविता (सहस अठोतर कलशा प्रभु के सिर ढुरे, आदि) पढ़ना उचित नहीं। अभिषेक के समय अभिषेक पाठ ही पढ़ना चाहिए। अभिषेक पाठ संस्कृत तथा भाषा का भिन्न-भिन्न है।

जिस प्रकार अरहंत भगवान क्षुधा तृषा (भूख, प्यास) आदि दोषों से रहित हैं, अतः उनको जल पीने और नैवेद्य (पकवान-पक्वान्न), फल खाने की आवश्यकता नहीं है। पूजन में भक्त पुजारी अपने क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण आदि दोषों से मुक्त होने के अभिप्राय से उन पदार्थों को भगवान के सामने चढ़ाता है,

भगवान् को खिलाने-पिलाने का अभिप्राय अष्ट द्रव्य चढ़ाने में नहीं रक्खा गया है।

इसी प्रकार अरहन्त भगवान् समस्त मल-रहित परम-औदारिक शरीर-धारक हैं, उनका अभिषेक करने से उनका शारीरिक मल दूर नहीं होता, न ऐसा किया ही जाता है। किन्तु एक भक्त भक्तिवश भगवान् के साथ निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिये उनके शरीर का स्पर्श करना चाहता है, भक्तिवश उनके चरण की धूल अपने मस्तक से लगाना चाहता है, अपनी भक्ति विवश इन इच्छाओं को सम्पन्न (पूर्ण) करने के लिये पूजन के अंग रूप में पूजन से पहिले अभिषेक किया जाता है।

अभिषेक को करते समय अभिषेक करने वाले के हृदय में तथा अभिषेक देखने वालों के हृदय में अच्छा भक्तिभाव उत्पन्न होता है। इसके सिवाय भगवान् के अभिषेक का जल आदि उत्तम अंगों से लगाकर भगवान् के स्पर्श (छूने) की पवित्र इच्छा की आंशिक (किसी अंश में) पूर्ति की जाती है।

अभिषेक के द्वारा भगवान् की वीतराग मुद्रा और भी अधिक दैदीप्यमान हो उठती है, यह बिना चाहा-गौण प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है।

—:o:—

## अभिषेक पाठ

( श्री पं० रूपचन्दजी पांडे कृत )

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमों जोरि जुग पान॥

( आनन्द मंगल )

श्री जिन जग में ऐसो को बुधिवन्त जू,
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।

इन्द्रादिक सुर चार-ज्ञानधारी मुनी,
कहि न सकें तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी॥

अनुपम अमित गुणगणनि-वारिधि ज्यों अलोकाश है।
किमि धरें उर कोप में सो, अकथ गुणमणि-राश है॥
पै निज प्रयोजन सिद्धि की, तुम नाम में ही शक्ति है।
यह चित में सरधान यातें, नाम ही में भक्ति है॥

ज्ञानावरणी दर्शन – आवरणी भने,
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने।
लोकालोक विलोक्यो केवल-ज्ञान में,
इन्द्रादिक के मुकट नये सुरथान में॥

तव इन्द्र जान्यो अवधितें उठि सुरन-युत वन्दत भयो,
तुम पुण्य को प्रेर्यो हरी ह्वै मुदित धनपति सों चयो।
अब वेगि जाय रचो समवसृति सफल सुरपद को करो,
साक्षात श्री अरहन्त के दर्शन करो कल्मष हरो ॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती,
चल आयो तत्काल मोद धारे अति,
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयो,
दे प्रदच्छिना वार वार वन्दत भयो॥

अतिभक्ति भीनो नम्र-चित ह्वै समवशरण रच्यो सही,
ताकी अनूपम शुभगती को कहन समरथ कोउ नहीं।
प्राकार तोरण सभामण्डप कनक मणिमय छाजहीं,
नगजड़ित गन्धकुटी मनोहर मध्य भाग विराजहीं ॥३॥

सिंहासन तामध्य बन्यो अद्भुत दिपै,
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै।
तीन छत्र सिर शोभित चौंसठ चमर जी
महा-भक्तियुत ढोरत चमर तहं अमर जी।

प्रभु तरनतारन कमल ऊपर अन्तरीक्ष विराजिया,
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोक भविजन सुख लिया।
पुनि आदि द्वादश सभा के भवि जीव मस्तक नायकें,
बहु भांति बारम्बार पूजें नमें गुणगण गायकें ॥४॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही,
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं।
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नशे,
राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे ॥

श्रम बिना श्रम जल रहित पावन अमल ज्योति स्वरूप जी,
शरणागतन की अशुचिता हरि करत विमल अनूप जी।
ऐसे प्रभू की शान्ति मुद्रा को न्हवन जलतें करैं,
जस भक्तिवश मन-उक्ति तें हम भानु ढिग दीपक धरैं ॥५॥

तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो,
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो,
महा मलिन तन में वसु-विधि-वश दुख सह्यो ॥

बीत्यो अनन्तो काल यह मेरी अशुचिता ना गई,
तिस अशुचिता हर एक तुम ही भरहु वांछा चित ठई।
अब अष्ट कर्म विनाश सब मल रोष रागादिक हरौ,
तनरूप कारागेह तें उद्धार शिव वासा करौ ॥६॥

मैं जान्यो तुम [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]

विधि अशुभ नसि शुभ बंध तैं ह्वै शर्म सब विधि-नाश तैं ॥७॥
पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं,
पावन पानि भये तुम चरनन परसतैं।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं,
पावन रसना मानी तुम गुण-गान तैं।
पावन भई परजाय मेरी भयो मैं पूरण धनी,
मैं शक्ति-पूर्वक भक्ति कीनी पूर्ण भक्ति नहीं बनी।
धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिव घर की धरी,
भरि क्षीरसागर आदि जल-मणिकुम्भ भरि भक्ता करी ॥८॥
विघन सघन वन-दाहन-दहन प्रचण्ड हो,
मोह महातम दलन प्रबल मारतण्ड हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो,
जग-विजयी जमराज नाश ताको करो॥
आनन्द-कारण दुख-निवारण परम मंगलमय सही,
मोसो पतित नहिं और तुम सो पतिततार सुन्यो नहीं।
चिन्तामणी पारस कलपतरु एक भव सुखकार ही,
तुम भक्ति नौका जे चढ़े ते भये भवदधि पार जी ॥९॥
तुम भवदधि तें तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमें उतारो पार ॥१०॥

—:o:—

## दर्शन के समय क्या पढ़ें

भगवान् की वेदी के सामने जाते हुए प्रथम ही निम्नलिखित णमोकार मन्त्र उच्चारण करें—

ॐ जय जय जय, नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु,
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरि
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

(इस नमस्कार मन्त्र में प्राकृत भाषा में पूर्वोक्त पांच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।) णमोकार मंत्र पढ़कर नीचे लिखे वाक्य पढ़ें।

एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

[यानी—यह पांच परमेष्ठियों को नमस्कार रूप मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और समस्त मंगलों में पहला मंगल रूप है।]

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

(इन वाक्यों में संसार में सब से अधिक मंगल यानी शुभ, सबसे अधिक उत्तम और संसार में शरण यानी आश्रय रूप—१. अरहन्त, २. सिद्ध, ३. साधु और ४. जैन धर्म को बताया है। चत्तारि मंगलं—चार पदार्थ मंगलीक हैं, अरहंता मंगलं—अर्हन्त भगवान् मंगल रूप हैं। सिद्धा मंगलं—सिद्ध भगवान् मंगलीक हैं। साहू मंगलं—साधु परमेष्ठी मंगल रूप हैं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं—केवली भगवान् का उपदेश किया हुआ धर्म मंगलरूप है। चत्तारि लोगुत्तमा—जगत् में चार पदार्थ उत्तम यानी सबसे श्रेष्ठ हैं। अरहंता लोगुत्तमा—अर्हन्त भगवान् लोक में उत्तम हैं। सिद्धा लोगुत्तमा—सिद्ध भगवान् जगत् में सबसे श्रेष्ठ हैं। साहू

लोगुत्तमा=साधु परमेष्ठी लोक में उत्तम हैं। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा=केवली भगवान का उपदिष्ट धर्म इस जगत् में उत्तम है। चत्तारि सरणं पवज्जामि=मैं चार पदार्थों की शरण लेता हूं। अरहंते सरणं पव्वज्जामि=अर्हंत भगवान की शरण लेता हूं। सिद्धं सरणं पव्वज्जामि=सिद्ध परमेष्ठी की शरण लेता हूं। साहू सरणं पव्वज्जामि=मैं साधु परमेष्ठी की शरण लेता हूं। केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि=केवली भगवान् के उपदिष्ट धर्म की शरण लेता हूँ। फिर नीचे लिखा छन्द पढ़ें।

**ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय**
**चंद्र पहुप शीतल श्रेयांस नमि वासुपूज्य पूजत सुरराय ॥**
**विमल अनन्त धर्मजस उज्ज्वल शांति कुंथु अरि मल्लि मनाय**
**मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥**

इतना पढ़कर भगवान् के आगे चावल चढ़ाकर धोक दें। तदनन्तर पठनीय स्तोत्रों में से कोई एक अथवा संस्कृत भाषा का भक्तामर आदि जो भी स्तोत्र याद हो, पढ़ता हुआ भगवान की प्रदक्षिणा दे।

## शास्त्र जी को नमस्कार करने की कविता

वीर हिमाचल तें निकसी, गुरु-गौतम के मुख-कुण्ड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली जग की जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान-पयोनिधि माहिं रली, बहु भंग तरंगनि सों उछरी है।
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है॥१॥
या जग मन्दिर में अनिवार अज्ञान-अंधेर छयो अति भारी।
श्रीजिनकी धुनि दीप शिखामय, जो नहिं होत प्रकाशनहारी॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामें जीव अनादितें, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥११॥
धन कन कंचन राज-सुख सबहि सुलभ कर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥१२॥
जांचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्तारैन ।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन ॥१३॥

## पं० बुधजन कृत स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेटि जामन मरण जी ॥
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रमगिन्यो हितकार जी ॥१॥

भव विकट वन में कर्म वैरी, ज्ञान धन मेरो हरो ।
तव इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरो ॥
धनि घड़ी यह धनि दिवस ये ही, धनि जनम मेरो भयो ।
अब भाग्य मेरे उदय आयो, दरश प्रभु को लखि लयो ॥२॥

छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं ।
वसु प्रतिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि छवि को हरैं ॥
मिटि गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि-आतम भयो ।
मो उर हरष ऐसो भयो मनु, रंक चिन्तामणि लयो ॥३॥

मैं हाथ जोड़ि नवाऊं मस्तक, वीनऊं तुव चरण जी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारण तरण जी ॥
याचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी ।
'बुध' याचहूं तुव भक्ति भव-भव दीजिए शिवनाथ जी ॥४॥

# सामायिक

संसारके समस्त पदार्थों के साथ यहां तक कि अपने शरीर से भी मोह-ममता दूर करने के लिये जब किसी से द्वेष घृणा मिटाने के अभिप्राय से जो मन के विचारों को आत्मा की ओर सन्मुख किया जाता है उसे 'सामायिक' कहते हैं।

आत्मा को राग द्वेष आदि विकार-मैलों से शुद्ध करने के लिये सबसे अच्छा साधन यह आत्मध्यान या सामायिक ही है। इस कारण प्रति दिन कुछ न कुछ समय तक सामायिक अवश्य करनी चाहिये।

## सामायिक की विधि

जहां पर कोई पशु, पक्षी, स्त्री पुरुष, बच्चे आदि अपने शब्दों या अन्य किसी चेष्टा से मन को विक्षेप-विचलित करने वाले न हों, जो स्थान शान्त हो, कोलाहल तथा उपद्रव से रहित हो, ऐसे स्थान पर सामायिक करनी चाहिये।

सामायिक करने से पहिले अपने वस्त्र-शिर के बाल आदि ठीक कर लेने चाहियें जिससे सामायिक करते समय वायु से उड़ कर या हिलते हुए वे चित को विचलित करने का कारण न बन सकें।

सबसे पहले पूर्व दिशा की ओर अथवा उतर दिशा की ओर मुख करके खड़ा होकर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़े, फिर पृथ्वी पर वहीं बैठकर धोक देवे, तदनन्तर उसी स्थान पर फिर खड़ा होकर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़े, उसके बाद हाथ जोड़कर तीन आवर्त (जुड़े हुए हाथों को बायीं ओर से गोल रूप में तीन बार पूरा घुमाना ) और एक 'शिरोनति' (जुड़े हुए हाथों पर मस्तक लगाकर नमस्कार) करे। इतना कर लेने पर दाहिने हाथ की ओर घूम जावे, उधर भी तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तीन आवर्त, एक शिरोनति करे, फिर दाहिनी ओर

हो तो 'आचार्य श्री' के स्थान पर भट्टारक श्री' या 'पण्डित श्री' कहकर उस का नाम बोलना चाहिये) विरचितं। श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु)।

मंगलं भगवान्वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥४॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥५॥

इस ॐकार पाठ को पढ़ लेने पर ग्रन्थ का मंगलाचरण पढ़ना चाहिये तदनन्तर शास्त्र प्रारम्भ करना चाहिये। शास्त्र सभा में यदि कोई श्रोता (सुनने वाला स्त्री पुरुष) कोई शंका करे तो वक्ता (शास्त्र पढ़ने वाले) को बहुत शांति के साथ प्रश्न का ठीक शास्त्र-अनुसार उत्तर देना चाहिये। यदि प्रश्न अति गूढ़ या कठिन हो, अथवा जिसका उत्तर वक्ता को शास्त्र अनुसार न आता हो, या उस समय शास्त्र की वह बात स्मरण न हो, तो उसको स्पष्ट कह देना चाहिये कि उस प्रश्न का उत्तर इस समय मुझे नहीं आता, इसको शास्त्र देख कर या अन्य विद्वानों से पूछ कर बताऊंगा। उस प्रश्न को नोट बुक में नोट करलें। समय मिलने पर उसका ठीक समाधान अन्य शास्त्र देख कर करे या किसी विद्वान से पूछकर शास्त्र-सभा में उसका समाधान करे।

ठीक उत्तर न आते हुए भी अपना झूठा महत्व रखने के लिये ऊटपटांग गलत उत्तर देना अनुचित है। वक्ता का पद गणधर का होता है, अतः उसे सदाचारी और सत्यवादी होना चाहिये। शास्त्र की कोई भी बात मनगढ़न्त, झूठी, निराधार

उपाय बतलाये गये हैं जिनको शास्त्रीय भाषा में 'दशलक्षणधर्म' कहते हैं। प्रत्येक अध्यात्मप्रेमी को दशधर्म की रूपरेखा समझ लेना तथा उसका यथासम्भव आचरण करना आवश्यक है। अतः क्रमशः संक्षेप से उन दश धर्मों का विवरण यहां देते हैं। :-

१. **क्षमा**—सहनशील शक्ति का नाम 'क्षमा' है। क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही क्षमा है।

२. **मार्दव**—आत्मा का कोमल परिणमन 'मार्दव' है। अभिमान पर विजय प्राप्त करने से मार्दव गुण प्रकट होता है।

३. **आर्जव**—मन-वचन-काय की क्रिया की एकरूपता को 'आर्जव' कहते हैं। छल-कपट न करने से ये गुण प्राप्त होता है।

४. **सत्य**—झूठ न बोलना ही सत्य है। जिससे किसी की आत्मा दुखित हो ऐसा सत्य भी नहीं कहना चाहिये।

५. **शौच**—हृदय की पवित्रता का नाम शौच धर्म है। लोभ न करना ही शौच धर्म कहलाता है।

६. **संयम**-इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त करना ही संयम है।

७. **तप**-इच्छाओं का रोकना ही तप है।

८. **त्याग**-स्व-अनुग्रह (संवर, निर्जरा) तथा अन्य प्राणी के संकट दूर करने के लिए जो द्रव्य का दान किया जाता है वह त्याग है।

९. **आकिंचन्य**-आत्मा के निज गुणों के सिवाय-जगत् के पदार्थों में राग-भाव न रखना ही आकिंचन्य है।

१०. **ब्रह्मचर्य**-कामवासना पर विजय प्राप्त करना ही ब्रह्मचर्य है।

के समान शुद्ध गुण- वाला जानकर—श्रद्धान कर—श्रौर सब प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग कर उसी का ध्यान करना है। राग द्वेष मोह से कर्म बंधते हैं। इसके विपरीत वीतराग भावमयी आत्मसमाधि से कर्म झड (नाश हो) जाते हैं।

(९) श्रहिंसा परम धर्म है। साधु इसको पूर्णता से पालते हैं। गृहस्थ यथाशक्ति अपने अपने पद के अनुसार पालते हैं। धर्म के नाम पर मांसाहार. शिकार, शौक आदि व्यर्थ कार्यों के लिये जीवों की हत्या नहीं करते हैं।

(१०) भोजन शुद्ध, ताजा, (मांस, मदिरा, मधु रहित) व पानी छना हुआ लेना उचित है

(११) क्रोध. मान, माया, लोभ यह चार आत्मा के शत्रु हैं, इसलिये इनको दूर करना चाहिये।

(१२) साधु के नित्य छह कर्म ये हैं—सामायिक या ध्यान, प्रतिक्रमण (पिछले दोषों की निंदा), प्रत्याख्यान (आगामी के लिए दोष त्याग की भावना), स्तुति, वन्दना, कायोत्सर्ग (शरीर की ममता का त्यागना)।

(१३) गृहस्थों के नित्य छह कर्म ये हैं—देव-पूजा, गुरु-भक्ति शास्त्र पठन, संयम, तप और दान।

(१४) साधु नग्न होते हैं, वह परिग्रह व आरम्भ नहीं रखते। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह-त्याग, इन पांच महाव्रतों को पूर्ण रूप से पालते हैं।

(१५) गृहस्थों के आठ मूल गुण ये हैं—मदिरा, मांस, मधु का त्याग तथा एक देश यथाशक्ति अहिंसा, सत्य. अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह-प्रमाण, इन पांच अणुव्रतों का पालना।

( जैन धर्म प्रकाश से )

चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी। परवनितासों दृग जोरी ॥ आरंभपरिग्रह भीनो। पनपाप जु या विधि कीनो।८। सपरस रसना घ्राननको। चखु कान विषयसेवनको॥ बहु करम किये मनमानी। कछु न्याय अन्याय न जानो ॥९॥ फल पंच उदंबर खाये। मधु मांस मद्य चितचाहे॥ नहिं अष्टमूल-गुणधारी। विषयन सेये दुखकारी ॥१०॥ दुइवीस अभख जिन-गाये। सो भी निशदिन भुंजाये॥ कछु भेदाभेद न पायो। ज्यों त्योंकरि उदर भरायो ॥११॥ अनंतानु जु बंधो जानो। प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥ संज्वलन चौकरी गुनिये। सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥ परिहास अरतिरति शोग। भय ग्लानि तिवेद संजोग॥ पनवीस जु भेद भय इम। इनके वश पाप किये हम ॥१३॥ निद्रावश शयन कराई। सुपनेमधि दोष लगाई। फिर जागी विषयवन धाओ। नानाविध विषफल खायो ॥१४॥ कियेऽहार निहारविहारा। इनमें नहिं जतन विचारा॥ बिन देखी धरी उठाई। बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५ तब ही परमाद सतायो बहुविधि विकलप उपजायो॥ कछु सुधिबुधि नाहिं रही है। मिथ्यामति छाय गयी है ॥१६॥ मरजादा तुमढिग लीनी। ताहूमें दोष जु कीनी॥ भिन भिन अब कैसें कहिये। तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥१७॥ हा हा! मैं दुष्ट अपराधी। त्रसजीवनराशी विराधी॥ थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुना नहिं लीनी ॥१८॥ पृथिवी बहु खोद कराई। महलादिक जागां चिनाई॥ पुनि बिनगाल्यो जल ढोल्यो। पंखातें पवन विलोल्यो ॥१९॥ हा हा! मैं अदया-चारी। बहु हरितकाय जु विदारी॥ तामधि जीवन के खंदा। हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥ हा हा! परमाद बसाई। बिन देखे अगनि जलाई॥ तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥ बीध्यो अनराति पिसायो। ईंधन बिन सोधी जलायो॥ झाडू ले जागां बुहारी। चिवटी आदि जीव विदारी॥ २२॥ जल छानि जिवानी कीनी। सो हू पुनि डारि जु दीनी॥

## सिद्धचक्र की स्तुति

(श्री व्याख्यान वाचस्पति पं० मक्खन लाल जी देहली)

श्री सिद्धचक्र का पाठ करो, दिन आठ,
ठाठ से प्रानी, फल पायो मैना रानी ॥टेक॥

मैना सुन्दरि इक नारी थी, कोढ़ी पति लख दुखियारी थी,
नहिं पड़े चैन दिन रैन व्यथित अकुलानी ॥फल पायो०
जो पति का कुष्ट मिटाऊंगी, तो उभय लोक सुख पाऊंगी,
नहिं अजागलस्तनवत निष्फल जिन्दगानी ॥फल पायो०
एक दिवस गई जिन मन्दिर में, दर्शन कर अति हर्षी उर में,
फिर लखे साधु निर्ग्रन्थ दिगम्बर ज्ञानी ॥ फल पायो०
बैठी कर मुनि को नमस्कार, निज निन्दा करती बार बार,
भर अश्रु नयन कही मुनि सों दुखद कहानी ॥फल पायो०
बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो, श्री सिद्धचक्र का पाठ करो,
नहिं रहे कुष्ट की तन में नाम निशानी ॥फल पायो०
सुन साधु वचन हर्षी मैना, नहिं होय झूठ मुनि के वैना,
कर के श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की ठानी ॥फल पायो०
जब पर्व अठाई आया है, उत्सव युत पाठ कराया है,
सब के तन छिड़का यंत्र न्हवन का पानी ॥फल पायो
गंधोदक छिड़कत वसु दिन में, नहिं रहा कुष्ट किंचित तन में,
भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी ॥फल पायो
भव भोग भोग योगेश भये, श्रीपाल कर्म हनि मोक्ष गये,
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी ॥फल पायो
जो पाठ करें मन वच तन से, वे छूट जायं भव बन्धन से,
"मक्खन" मत करो विकल्प कहे जिनवानी ॥फल पायो

ाद् दुःखं धर्मात् सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
द्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम् ।८।आत्मानुशासन

—पाप से दुःख और धर्मसे सुख होता है, यह बात सब जनों
भले प्रकार प्रसिद्ध है। इसलिये जो भव्य प्राणी सुख की
लाषा करता है उसे पाप को छोड़कर निरंतर धर्म का
रण करना चाहिये।

दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु।
लहिय दिव्वरयणं भूइणिमित्तं पजालंति ॥३००॥

(स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

—दुर्लभ मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके जो पांचों
यों के विषय में रमते हैं। वे मूढ़ दिव्य रत्न को पाकर उसे
के लिए जलाकर राख कर डालते हैं।

म-गुण-गहण-रओ उत्तम-साहूण विणय-संजुत्तो।
म्मिय-अणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥३१५॥

(स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

—जो उत्तम गुणोंको ग्रहण करनेमें तत्पर रहता है, उत्तम
ओं की विनय करता है तथा साधर्मी जनों से अनुराग करता
ह उत्कृष्ट सम्यग्दृष्टि है।

अर्थ—अज्ञान रूपी अंधकारको नष्ट करने वाले प्राणीके जो तप और शास्त्र विषयक अनुराग होता है वह अनुराग सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिये होता है ।

संयुक्तानां वियोगश्च भवतीह नियोगतः ।
किमन्यैरङ्गतोऽप्यङ्गी निःसंगो हि निवर्तते॥६०॥ क्षत्रचूड़ामणि

अर्थ—जिनका संयोग हुआ है उनका वियोग भी अवश्यंभावी है । अन्य की तो बात ही क्या है किन्तु प्राणी सब कुछ यहां पर छोड़कर इस शरीर से भी अकेला ही निकलकर जाता है ।

अन्यदीयमिवात्मीयमपि दोषं प्रपश्यता ।
कः समः खलु मुक्तोऽयं युक्तः कायेन चेदपि॥ कवि वादीभसिंह

अर्थ—जो जीव अन्य प्राणियोंके समान अपने भी दोषोंको देखता है उसके समान कोई दूसरा नहीं हो सकता वह यद्यपि शरीर से संयुक्त है, फिर भी मुक्त के समान है ।

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम् ।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥१५५॥
(उपासकाध्यन)

अर्थ—अकेली एक जिन भक्ति ही ज्ञानीके दुर्गतिका निवारण करने में, पुण्य का संचय करने में और मुक्ति रूपी लक्ष्मी को देने में समर्थ है ।

मङ्गलं पुण्यं पूतं पवित्रं प्रशस्तं शिवं शुभं कल्याणं ।
भद्रं सौख्यमित्येवमादीनि मङ्गल—पर्याय—वचनानि
(धवल १ पृ० ३१-३२)

अर्थ—मङ्गल, पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, शुभ, कल्याण, भद्र और सौख्य इत्यादि मंगल के पर्यायवाची नाम हैं ।

धम्मो वत्थु-सहावो-खमादि-भावो य दस-विहो धम्मो।
रयत्तणयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४२८॥
(स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

अर्थ-वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। दस प्रकारके क्षमा आदि भावों को धर्म कहते हैं। रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और जीवों की रक्षा को धर्म कहते हैं।

आहारसणे देहो देहेण तवो तवेण रयसडणं।
रयणासे वरणाणं णाणे मोक्खो भणइ॥५२१॥ (भावसंग्रह)

अर्थ—आहार से शरीर रहता है। शरीर से तपश्चरण होता है तप से कर्म रूपी रज का नाश होता है। कर्म रूपी रज के नाश होने पर उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है और उत्तम ज्ञान से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

—:o:—

## ※ आरती ※

यह विधि मंगल आरती कीजे।
पंच परम पद भजि सुख लीजे ॥टेक॥

प्रथम आरती श्री जिनराजा, भव जल पार उतार जिहाजा १
दूजी आरती सिद्धन केरी, सुमरण करत मिटै भव फेरी २
तीजी आरती सूर मुनिन्दा, जन्म मरण दुःख दूर करिंदा ३
चौथी आरती श्री उवज्झाया, दर्शन देखत पाप पलाया ४
पांचवीं आरती साधु तुम्हारी, कुमति विनाशन शिव अधिकारी ५
छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक वन्दों आनन्द कारी ६
सातमी आरती श्री जिनवाणी, द्यानत स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ७

श्री महावीरा प्रिंटिंग प्रेस, सदर बाजार, दिल्ली।